UNIVERSAL LIBRARY
OU_186333
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
No. H81
D99C
Accession No. G. H1096
ıor द्विवेदी, सोहनलाल.
: चित्रा. 1943.
his book should be returned on or before the date last marked below.

चित्रा

सोहनलाल द्विवेदी

वक्तव्य

मेरी 'चित्रा' की रचनाओं का संकलन हिंदी वाङ्मय तथा अंग्रेज़ी भाषा के प्रतिभाशाली कवि एवं अध्यापक सुहृद्वर व्रजमोहनजी तिवारी एम० ए० ने किया है। इस प्रकार के संकलन के प्रकाशित करने की मैंने कल्पना भी नहीं की थी। अवश्य ही इस चयन को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

चित्रा की रचनाओं को जब मैंने अपने एक परम आदरणीय साहित्यिक बंधु को सुनाया तब उन्होंने कहा, 'आपने लिखा तो बहुत कुछ है, किन्तु कविता अपने धरातल पर इन्हीं रचनाओं में प्रवाहित हुई है।"

जिन्हें हृदय की हार्दिकता की परख है उन्हें यह प्रकाशन प्रिय लगेगा, इसमें मुझे संदेह नहीं।

'अधिकार' लखनऊ.
वसंत पंचमी
१६६६

सोहनलाल द्विवेदी

गीत

यह दुराव अब चल न सकेगा।

चल न सकेगा यह संकोचन,
खुलते भावों का संगोपन;
यह चानी मुसकान तुम्हारी
भृकुटि-धनुष अब छल न सकेगा।

पाकर चंद्र वदन की छाया,
शीतल बने प्राण औ' काया;
यव-आतप के अगम पंथ में
कोई भी दुराव खल न सकेगा।

— सोहनलाल द्विवेदी

निमंत्रण

आओ, कर लो क्षण भर विराम।

निर्झर झर-झर झरता रहता
अपनी अनंत धुन में विलीन,
खग-कुल कुलकुल कर कह जाता
अपनी सुख-दुख गाथा नवीन;

हम पथिक एक पथ के दोनों
दोनों ही का है एक धाम;

आओ, कर लो क्षण भर विराम।

मलयानिल बहता मंद-मंद,
सुमनों से कहता मधुर छंद;
वे उड़ चलते नीले नभ पर
सौरभ बनकर चढ़कर अमंद!

किसलय कहता कातर स्वर से
ले चलो मुझे भी बाँह थाम।

आओ, कर लो क्षण भर विराम।

जीवन-यात्रा में सुख क्या रे
लें बैठ पलक भर एक संग,
स्नेहिल हो लें तन्मय पथ में
पावन-प्रकाश की हो उमंग;

एकाकी रे दुर्वह जीवन!
फिर चलें न क्यों मिल याम-वाम?

आओ, कर लो क्षण भर विराम।

लहरों के प्रति

प्रणयी की मृदुल उमंगों-सी
लज्जा की तरल तरंगों-सी,
यह खेल कौन अद्भुत रचती हो
इन्द्रधनुष के रंगों-सी ?

अँधियाली में उजियाली-सी,
सूखे वन में हरियाली-सी,
तुम हो अतीत-सी मधुर कौन
ऊषा की मादक लाली-सी ?

किस कवि की तुम कल्पना सजल ?
किस बालक की भावना सरल ?
किस होनहार नवयुवक हृदय की
तुम स्वप्निल-कामना तरल ?

तुम बुद्धदेव की करुणा-सी
लहराती ममता छहराती,
किस दीन दुखी के मानस का
सन्ताप मिटाने हो जाती ?

तुम लघु-लघु प्रिय-प्रिय कौन अरी
फिरती रहती चंचल-चंचल ?
मेरी पलकों पर फैलाती
अपनी मादकता का अंचल !

ऐ सुंदरियो, जल की परियो !
यह कैसी केलि मचाती हो ?
इठलाती हो, इतराती हो,
मुसकाती हो, बलखाती हो !

आकांक्षा-सी ऊपर उठकर,
प्रार्थना-सदृश नीचे गिरकर।
यह शिलाखंड में कौन लेख
लिखती रहती हो निशिवासर ?

पल में उठती पल में गिरती,
यह कैसा है उत्थान-पतन ?
करती रहस्य क्या उद्घाटन ?
है ऐसा ही अस्थिर जीवन।

पीयूष-वर्षिणी निर्झरिणी !
मेरे अंतस्तल में उतरो,
तन-मन में प्राणों में मेरे
नवजीवन का आनंद भरो;

अपने ही जैसा कर दो यह
मेरा मानस भी सरस-सरल,
कोमल-कोमल, निर्मल-निर्मल,
उज्ज्वल-उज्ज्वल, शीतल-शीतल।

ग्राम-कन्या

वह ग्राम-कन्यका चली
जा रही पथ में,
पहने कानों पर तरकी
मुख पर बाला,

अधखुले बाल रूखे
लहराते सिर पर,
आँखों में अंजन बड़ा-
बड़ा-सा काला;

पेड़ों-पत्तों में जो
लावण्य निखरता,
वह खेल रहा है उसके
मुखमंडल पर,

अनजान नगर की हाट-
बाट से भोली,
वह देख रही है सबको
कौतुक भरकर;

है लाल-लाल लहँगा
काली ढिगवाला,
कुछ बूटे उसमें बने
हुए हैं सुंदर!

ओढ़नी छीट की
चमकदार चटकीली,
उर पर चोली है कसी
गजी की मनहर!

है कोकाबेली लिए
हाथ में फूली,
हैं हरे-हरे-से नाल
लटकते भू पर,

वनदेवी जैसे आती
चली नगर में
हिरणी-सी जाती ठिठक,
सकुच, कुछ लखकर।

गालों पर गुदना गुदा
हुआ है नीला,
कुछ बुंदे उसके चमक
रहे हैं बढ़कर,

गाँवों का है यही
सिंगार मनोहर,
इससे लगती वह और
सलोनी सुंदर।

राँगे की काली बिछियाँ
हैं पाँवों में,
हाथों में चूड़ी पड़ीं
लाख की पीली;

दो काँसे के हैं कड़े
पड़े बाजू में,
चूनर की ढिग की कोर
सुघर है नीली।

ग्राम-वधू

वह महुआ बिनती तरु नीचे !

कुछ नाम पता है ज्ञात नहीं
किसकी प्रेयसि किसकी बहना ?
गोरी बाँहों में चार-चार
हैं लाल-लाल चूड़ी—गहना ;

पहने नीली-नीली धोती
मुँह-हाथ-पाँव अध-खुले हुए,
खिलती ज्यों आधी भरी नहर
तरुपत्र जहाँ हों लदे हुए,

खेतों खलिहानों में इसने
ही क्या अमृत के कण सींचे ?

वह महुआ बिनती तरु नीचे !

वह लाज भरी सौन्दर्य भरी
है देख नहीं सकती ऊपर ;
फिर भी आँखें बनतीं चंचल
वह देख रही अविरत भू पर ;

फिर भी, आँखें लुक-छिप करके
हैं देख रहीं मुझको रह-रह ,
कौतुक कौतूहल उसे बड़ा
यह कौन यहाँ आ गया सुबह ?

मेरा मन शीतल हुआ, शूल क्या
इसने सब छन में खींचे ?

वह महुआ बिनती तरु नीचे !

है कहीं वासना नहीं उधर ;
है कहीं कामना नहीं उधर ;
है आवभगत-सी आँखों में
जैसे पाहुन हो आया घर ;

वह ग्राम-वधू वह ग्राम-बाल ,
अपनापन से है भरा हृदय ,
वह ग्राम-जननि वह ग्राम-देवि
यह भूख-प्यास कर देती त्तय ;

निर्जन में जीवन डाल रही
निज कृति में रत है दृग मीचे !

वह महुआ बिनती तरु नीचे !

हीरे-से मोती-से सुंदर
महुए शत-शत बिखरे भू पर,
मीठी-मीठी उठती सुगंध
जो देती मन प्राणों को भर ;

है लिए बाँस की डलिया वह
जो रंग-बिरंगी है मनहर,
चुन-चुन महुए वह डाल रही
ज्यों मालिनि बिनती फूल सुघर ;

ये ग्रामीणों के रसगुल्ले
जो पैदा करते बाग़ीचे।

वह महुआ बिनती तरु नीचे !

हिमाद्रि का आत्मपरिचय

दूर ही से मनहरण मैं।

गगनचुंबी उच्च-मस्तक
मुकुटमणि-सा सुभग जगमग
शुभ्र-हिम-मंडित कलेवर
दिव्यता कमनीय पग-पग ;

श्याम नीलम तरु, लता, तृण ,
सुरभि-मधु-पूरित दिशा मग ,
किन्तु अंतर घाटिकाएँ ,
पतन का हूँ अवतरण मैं।

दूर ही से मनहरण मैं।

लिए हिम शीतल गिरा हूँ
बनावन की सघन. छाया ,

विभव-वैभव खान हूँ मैं
किए अधिकृत विश्व माया ;

मसृण कोमल कान्त हूँ मैं
सजल शीतल स्निग्ध छाया ,
पर, उदर में महाज्वाला ,
स्वार्थ का दृढ़ संस्करण मैं !

दूर ही से मनहरण मैं ।

अचल योग समाधि साधे
ध्यान की धूनी रमाये ,
जड़ तपस्वी सा सुदृढ़
संयम नियम की रज लगाये ;

सह रहा हूँ विश्व-आतप
'तत्वमसि' का तन सजाये ,
कामना के गर्त शत हूँ ,
वासना का उपकरण मैं !

दूर ही से मनहरण मैं ।

एक भी तो डग नहीं
मग में जहाँ पर, सम हूँ मैं ,

विषम हूँ इतना, कि जग-
विश्वास का क्या क्रम रहूँ मैं ?

जानता हूँ स्वयं कितनी
सत्यता का भ्रम रहूँ मैं,
कुलिश कंटक हैं हृदय में
बहिर्कुसुमित आभरण मैं !

दूर ही से मनहरण मैं।

बन रहे हो मुग्ध मन में
पालकर मृदु मधुर आशा,
कर सकोगे यहाँ आकर
पूर्ण अंतस की पिपासा ;

छाँह पा शीतल मनोरम
कट चलेगी दुख दुराशा,
उपल जल है प्राण-घातक
नीर का बस संस्मरण मैं !

दूर ही से मनहरण मैं।

मैं स्वयं कटि धँसा हूँ
गहन खाई के किनारे,

बस सका अब तक कहाँ
इस गर्त से हो कभी न्यारे ?

उठ सकोगे किस तरह फिर,
पा यहाँ मुझसे सहारे ?
क्षमा माँगूँगा प्रणत हो,
आज ही क्या ? आमरण मैं !

दूर ही से मनहरण मैं।

वासंती

प्रिय, नव पल्लव खिले डाल में
लोहित, रजत, स्वर्ण द्युतिमान,
लदी आम्र के ताम्र वृंत में
हीरों की बौरें छविमान;

कुसुमों के नीलम प्यालों में
ले माणिक मदिरा अभिराम,
मंद चरण धर चला समीरण,
पिला रहा जग को अविराम;

प्रियतम की मधुमय वाणी-सी
कुहुक उठी वह कल्याणी,
वन-वन उपवन-उपवन उत्सव
आई मधुऋतु की रानी;

तृण-तृण कण-कण में आकर्षण
नीलम दूर्वा उग आई
धनी बनी वसुधा भिखारिणी
सुख-श्री की वर्षा आई

सरोवरों की लघु-लघु लहरों—
में उठता मादक संगीत,
जैसे कोई जगा रहा हो
मधुमय स्मृति से स्वर्ण अतीत।

युग-युग का विराग तजकर प्रिय!
आज अतुल अनुराग भरो,
अपनी चिर-परिचिता प्रीति के
सिर पर मिलन सुहाग भरो!

निवेदन

मेरे यौवन के निकुंज में
आज खिले हैं नव-नव फूल,
बकुल, मुकुल, पाटल, शेफाली,
रजनीगंधा सौरभ मूल।

भ्रमर आ रहे झूम-झूमकर,
गाते हैं यौवन की तान,
बही सुगंध, गंधमधु-पागल
अलि-दल चंचल गाते गान।

हो यह मधुऋतु सफल आज यदि
तुम भी हो जाओ अनुकूल,
मेरे यौवन के निकुंज में
आज खिले हैं नव-नव फूल!

स्वागत

लाज तजकर आज प्रियतम !
खुले दिन में द्वार आओ।

मिलो भुज-भर डगर पथ में,
ज्योति नव-नव भर नयन में,
बहे अविरल प्रेम-धारा
अधर से छन-छन पवन में;

विश्व को दो सुरस संबल
मत उसे उर में छिपाओ।

लोक की मिथ्या कथा से
डर गए क्या सहज साजन ?
क्या उठा लोगे सँवारी
जो कुटी पर पर्ण-छाजन ?

सत्य के बल पर टिको प्रिय !
यह असत्य कथा भुलाओ !

मिलो दिन में, मिलो निशि में
मिलो तुम प्रतिपल निरंतर,
बाह्य क्यों हो और अपना ?
एक जब हो चुके अंतर !

अचल-प्रीति-प्रतीति से
जग के अडिग भ्रम को डिगाओ !

प्रतीक्षा के प्रहर

कब मिलन के क्षण बनेंगे
चिर प्रतीक्षा के प्रहर ये !

भार प्रतिपल बढ़ रहा है
विकल उत्सुक कामना का,
आज से पहले न आग्रह
रहा इतना याचना का ;
फल न चाहा सच्च ही
युग-युग अचल-आराधना का ;

आज कूल कगार ढाती
उठ रही कैसी लहर ये !
कब मिलन के क्षण बनेंगे
चिर प्रतीक्षा के प्रहर ये !

आज आतुरता बढ़ी इतनी
कि टूटा अमर संयम,
धारणा औ ध्यान चंचल
चेतना बन रही संभ्रम;
कुछ मिली आहट कि श्रुतिपुट में
हुआ यह भान-उपक्रम;

'आ गए वे कमल लोचन,
पग गए मग में ठहर ये!'
कब मिलन के क्षण बनेंगे
चिर प्रतीक्षा के प्रहर ये!

बढ़ रही ज्यों-ज्यों अवधि
त्यों-त्यों विकलता बढ़ रही है;
सहज मानस-तट भिगोती
कौन विस्मृति चढ़ रही है?
मूर्च्छना-सी आ गई, क्या
चेतना यह कढ़ रही है?

मधुर आशा पर निराशा के
गए तम-घन छहर ये।
कब मिलन के क्षण बनेंगे
चिर प्रतीक्षा के प्रहर ये?

ढल चली है आज जीवन-सांध्य,
फिर भी वे न आये;
क्या सतत असफल रहेंगे
फूल जो मैंने सजाये?
कब तलक बैठा रहूँ मैं
रात में दीपक जलाये?

जल चुकी जब वर्तिका,
कैसे सकेगी फिर ठहर ये?
कब मिलन के क्षण बनेंगे
चिर प्रतीक्षा के प्रहर ये?

आगमन

आज बरसों बाद आये
इस कुटी के द्वार में प्रिय !

दिवस भर जब माल गूँथा
रात भर दीपक जलाया,
और उनमें अश्रु के
मकरंद का रस भी मिलाया,
आगमन का मदिर कलरव
किन्तु फिर भी सुन न पाया;

आज आये तुम अचानक
क्या करूँ सत्कार मैं प्रिय ?
आज बरसों बाद आये
इस कुटी के द्वार में प्रिय !

बुझ गई है आज आँगन की
सुगंधित धूप बाती,
फेंक दी मुरझी हुई तोरण-
लतायें फूल-पाती,
और मंगलघट उधर निर्जल
धरा अपना सँघाती ;

कह सकेगा अश्रु थे कितने
गिराये प्यार में प्रिय ;
आज बरसों बाद आये
इस कुटी के द्वार में प्रिय !

अब न अभिलाषा उमंगें
अब नहीं वे याचनायें,
आज वैरागिनि बनीं
अनुरागिनी वे कामनायें,
मुड़ चली हैं चरण-वंदन में
हृदय की साधनायें ;

शरण दो अपने चरण की
दिव्य गंगाधार में प्रिय !
आज बरसों बाद आये
इस कुटी के द्वार में प्रिय !

तुम वही लावण्यमय
आरुण्यमयं हो पद्मलोचन,
खिल उठे जैसे क्षमा से
हां अभी सुंदर विलोचन,
सुखद कितने आज तुम
शरदेन्दु से हे तापमोचन!

आज सागर शांत है उर्मिल
न पागल ज्वार में प्रिय;
आज बरसों बाद आये
इस कुटी के द्वार में प्रिय!

अतीत-स्मृति

आज आ रही है रह-रहकर
बहुत दिनों की याद सखे !
उमड़ रहा है रोम-रोम में
एक अतुल आह्लाद सखे !

अहा ! मधुर थीं वे कितनी
जीवन की मतवाली घड़ियाँ,
हमने तुमने हिलमिल गूँथीं
प्यार-हार की मृदु-लड़ियाँ;

हम दोनों की हुई अलग
बस्ती जग में आबाद सखे !
आज आ रही है रह-रहकर
बहुत दिनों की याद सखे !

फैल गई मेरी बगिया में
सहसा प्यारी हरियाली,
फूले फूल, लतायें लहरीं
बही सुरभि वैभवशाली;

बने कमल की स्निग्ध हँसी तुम
मैं विमुग्ध मधुकर गुंजन,
फूट उठा तृण-तृण कण-कण में
नव-वसंत नूतन यौवन;

हम तुम रँगे एक ही रँग में
चढ़ा एक उन्माद सखे!
आज आ रही है रह-रहकर
बहुत दिनों की याद सखे!

वे सोने के दिन अपने
वे अपनी चाँदी की रातें,
रात-रात भर दिन-दिन भर
रसभरी रिझाने की बातें;

कितना था उनमें पागलपन
कितना उनमें सम्मोहन?
एक साथ जब दोनों उर में
जाग्रत हुई एक कंपन;

उन मधुमय घड़ियों का कितना
उन्मद मदिर प्रसाद सखे !
आज आ रही है रह-रहकर
बहुत दिनों की याद सखे !

अहा ! सुखद था वह कितना
संसार सुनहला था अपना,
टूट गई वह नींद, रह गया
है केवल जगमग सपना ;

सौरभ बन उड़ गया हमारे
जीवन का मादक मकरंद,
जिनकी सुधि में गूँथ रहा हूँ
मैं ये कुछ दर्दीले छंद !

यह क्या कम है अजर-अमर है
उस दिन का संवाद सखे !
आज आ रही है रह-रहकर
बहुत दिनों की याद सखे !

परिचय

जान अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं,
मुखर हो हो मौन जो
उस मौनता की तान हूँ मैं।

दीप्त होकर बुझ चुकी, उस
बुझे कण की आग हूँ मैं,
सजल हो जो अश्रु सूखा
वह जलनमय दाग़ हूँ मैं;

जो निशीथ ध्वनित बनाता
रणित राग विहाग हूँ मैं,
शीश पर चढ़ ढर चुका,
उतरा नवीन सुहाग हूँ मैं;

स्वर न जग पहचान पाया,
वह रुदनमय गान हूँ मैं;
जानकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं!

रात भर जल प्रात शीतल
बन गया वह दीप हूँ मैं;
जन्म ले-ले मिट गए मोती
जहाँ, वह सीप हूँ मैं,

जो सदा रहता अविकसित
वह अपुष्पित नीप हूँ मैं,
बस चुका, उजड़ा अचानक,
वह अभागा द्वीप हूँ मैं;

आदि था जिसका मधुर
उसका विधुर अवसान हूँ मैं;
जानकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं;

घाव शत उर में लिए
पर, संपुटित वह फूल हूँ मैं;
थामता अंचल व्यथित का
वह कलंकित शूल हूँ मैं;

प्रणय-पथ पर चल चुका
उसकी अपरिचित भूल हूँ मैं ;
देखता जो राह अपलक
वह उपेक्षित कूल हूँ मैं ;

अवधि बनकर जो रमे
उन चरण का आह्वान हूँ मैं !
जानकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं !

बन रही है छाँह शीतल
उस जलन की दाह हूँ मैं ;
जो दबी रहती अतल में
वह कसकती आह हूँ मैं ;

चाह बनकर जो धधकती
उस शिखर की चाह हूँ मैं ;
छोर पा न सकी अभी तक ,
वह भटकती राह हूँ मैं ;

जो अधर तक छू न पाया
वह अमृत का पान हूँ मैं ;
जानकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं ;

मधुर सुधि के तंतु से मृदु वृंत
आश्रित पत्र हूँ मैं;
वेदना से जल रहा जो
वह अरुण नक्षत्र हूँ मैं;

हो पराजय में जहाँ जय,
हारमय वह जीत हूँ मैं;
प्रति कड़ी में मूर्च्छना हो,
वह रसीला गीत हूँ मैं;

फूल खिल पाया न जो
उसकी कसक अरमान हूँ मैं;
जानकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं;

स्वर हुए लय खोज में
वह एक नीरव वीन हूँ मैं;
अतल जल में भी समाश्रित
वह पिपासित मीन हूँ मैं;

स्वाति को उर में छिपाए
विकल चातक दीन हूँ मैं;
दीपमय जल बन चुका जो
वह शलभ गतिहीन हूँ मैं;

अश्रु पी-पीकर खिली जो
वह अधर मुसकान हूँ मैं ;
जानकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं ;

गीत

उस प्रेमी जीवन की जय हो।

जो पीता हो विष का प्याला,
समझ अनूठी मादक हाला;

जन्म-मरण की भवबाधा से
जिसकी आत्मा अमर-अभय हो।

जो दीपक पर प्राण होमकर,
सोता हो सुख की समाधि पर;

जिस पर चढ़े हुए फूलों से
यह धरणी सुरभित मधुमय हो।

गीत

उमड़ पड़ा है प्रेम न जाने
आज कहाँ से चरणों में ?
छिपा हुआ बैठा था जाने
उर के किन आवरणों में ?

पावस घन-सा उमड़ रहा मन
जाने बरसेगा किस ओर ?
प्यासा कौन तृषा है किसको
किस चातक का उठता शोर ?

पर मैं तो अपना घट भरने
तीर तुम्हारे आया हूँ,
घन हूँ तो क्या नीर तुम्हीं से
पाकर नभ पर छाया हूँ !

मेरे सिंधु अगाध रत्नमय,
अमृत-विषमय पारावार!
कभी जान पाऊँगा क्या मैं
तुम कितने गंभीर उदार?

तुमसे ही लेकर रस तुमको
ही चरणों में सींचूँगा,
तुम न तपो ज्वालाओं में मैं
मन का आतप खींचूँगा!

गीत

ये प्रणय के ध्यान मेरे।

बन रहे हैं आज पूजन-
अर्चना के गान मेरे।

रूप उनका नित्य निर्मल,
धो हृदय का कलुष-कज्जल,
बहा बन सुरसरि विमल जल;

पूर्णिमा से वे अमा में
खिल उठे छविमान मेरे!

हाथ से लेकर हलाहल,
पी गए मधु-सा अचञ्चल,
दिया मृत को अमृत का बल;

आज मिथ्या में टिके वे
सत्य बन अभिमान मेरे।

वे प्रणय के ध्यान मेरे।

गीत

यह दुराव अब चल न सकेगा।

चल न सकेगा यह संगोपन,
खुलते भावों का संकोचन;

पहचानी मुसकान तुम्हारी,
भ्रकुटि धनुष अब छल न सकेगा।

यह दुराव अब चल न सकेगा।

पाकर चन्द्रवदन की छाया,
शीतल बने प्राण-मन-काया;

भव आतप के अगम पंथ में
कोई भी दुख खल न सकेगा।

यह दुराव अब चल न सकेगा।

गीत

है दिया जब से सहारा।

जर्जरित-सी धमनियों में
बह उठी नव रक्त-धारा।

हो गया फिर से हरा
उजड़ा हुआ उपवन हमारा,
आज कोकिल कूकती है
है वसंत, दिगंत प्यारा।

आज ढीली बीन के ये
तार फिर से सध गए हैं,
मधुर मीठी मीड़ उठती
स्वर निराले नए हैं।

बह उठी आनंद-धारा।

हास है उल्लास है इस
जगत में जीवन समर में!
आज मदिर मलार गाकर
खे रहा तरणी भँवर में;

शक्ति ने तन को सँवारा।

आज जननी के लिए
अनुराग नूतन त्याग जागा,
लौह-कड़ियाँ तोड़ दूँ ज्यों
सूत का हो मृदुल धागा!

आज बलि पथ बना प्यारा।

गीत

यह अशेष कथा हृदय की
क्या कभी कह पायँगे प्रिय।

सुन सकोगे तुम समय दे,
सुन सकोगे तुम हृदय दे ?
और अपने भाव भी क्या
शब्द भी बन जायँगे प्रिय ?

क्या कभी होगी न लज्जा
लिए शत परिधान सज्जा ?
खोलकर अवगुंठनों को
प्राण भी खिल जायँगे प्रिय ?

फिर न कुछ कहना रहेगा,
फिर न यों बहना रहेगा;
एक मौन समाधि सुख में,
विसुध हो बस जायँगे प्रिय।

गीत

आज अर्चन वंदना में
बीतते हैं दिन हमारे,
तुम उधर किस ध्यान में
जाते किधर हैं दृग तुम्हारे ?

अरुण चरणों की मधुर सुधि
है हमें पागल बनाती,
किन्तु तुम तो घूमते हो
दूर यमुना के किनारे !

चाहता मैं कुछ न गाऊँ
गीत बन जाता अचानक,
और तुम हो मौन, क्या कुछ
स्वर नहीं उठते तुम्हारे ?

चाहता हूँ जानना संबंध
है कैसा हमारा,
क्या नहीं हम चल रहे हैं
एक स्पंदन के सहारे ?

तुम कहोगे यह परीक्षा
यह कसौटी किसलिए है ?
पूछ लो अपने हृदय से
इस हृदय के प्रश्न सारे !

गीत

तुम वंचित न रहो।

लुटा दिया जब सब सौरभ-धन,
लुटा दिया दिशि-दिशि को मधुकण;
तब मेरी डालों के मधुकर!
तुम क्यों रिक्त रहो?
तुम वंचित न रहो।

आओ मेरे जीवन-सहचर,
तुम भी पियो अधर-मधु जी भर;
झूमो मतवाले बन भू पर।
विस्मृति लिए बहो।
तुम वंचित न रहो।

आओ नित्य-उपेक्षित मेरे,
कृपण बनूँ मैं क्यों हित तेरे?
तुमने जीवन-दान दिया तो,
लो जो दान चहो।
तुम वंचित न रहो।

गीत

तुम चिर-मुक्त रहो।

वन-वन उपवन-उपवन डोलो,
सुमन-सुमन में नवमधु घोलो;
कलिका ही के उर में बंदी
हो मत अनिल बहो।
तुम चिर-मुक्त रहो।

क्यों मैं बाँधूँ परिधि तुम्हारी,
बनूँ तुम्हारी क्यों लाचारी!
मुक्त-गगन से हिलमिल खेलो,
जीवन-मुक्ति गहो।
तुम चिर-मुक्त रहो।

जब जी हो आकर लहराओ,
मेरे कुंजों में बिलमाओ;
यह तो धाम तुम्हारा ही है,
जाओ जहाँ चहो।
तुम चिर-मुक्त रहो।

मुक्ता

फैला है अपार उपवन
फूलों का ओर न छोर,
नयनों की डलिया में कैसे
पाऊँ रूप बटोर ?

अनुरोध

आँखों से आँखें मिलकर
अब तक न हुई हैं चार,
किन्तु प्राण में प्राण घुल गए
हुए एक आकार !

इस बिछुड़न में बसा हुआ है
एक अजब संसार !
जहाँ नित्य नव-मादकता
करती है मधुर विहार ;

सखे ! न पर्दे से बाहर हो
देना घूँघट खोल,
लुट जायेगी मेरी सुषमा
की विभूति अनमोल ;

गीत

बनूँ न पथ में बाधा।

इससे रहता दूर विजन में,
लेकर अपनी वीणा वन में,
झंकृत हो न उठे यह मन में;

इससे ही मेरे अनुरागी!
मैंने यह विराग-व्रत साधा।

बनूँ न पथ में बाधा।

रहो लीन तुम साधन में,
जीवन के अमृत-अर्जन में,
लक्ष्य समक्ष बढ़ो क्षण-क्षण में;

मिले मुझे तुम, तुम्हें नहीं जय;
मिलन रहा तो आधा।
इससे ही मेरे अनुरागी!
मैंने यह विराग-व्रत साधा।

गीत

तो सखि, फिर, इसका क्या उपाय ?

जब मैं कुछ गाती हूँ डर-डर,
वे उसमें भर देते निज स्वर;
मेरे गायन सुंदर-सुंदर
उनमें पड़ जाता है अंतर;

मैं उनसे कह सकती न हाय!
तो सखि, फिर, इसका क्या उपाय ?

क्या तज दूँ गाने का स्वभाव ?
पर होगा यह दुखप्रद अभाव!
फिर कैसे उनसे हो दुराव ?
मेरे मेरे ही रहें भाव!

पर उनका हृदय न चोट खाय!
तो सखि, फिर, इसका क्या उपाय ?

गीत

मन ने मन को जान लिया है,
जब तुमने पहचान लिया है।

फिर भी नीरव हृदय-कहानी,
खुलती नहीं कंठ में वाणी,

किसकी लज्जा किसका भय है,
फिर यह किससे मान किया है?

जीवन कितना है? दो दिन का;
मिलन सदा होता दो छिन का!

कब के लिए कहो फिर तुमने
यह व्रत मौन विधान लिया है?

गीत

क्यों तुमने आँख चुरा ली अब ?

कल तक तो लखते थे शशि-मुख,
क्यों आते नहीं आज सम्मुख ?
अपना सुख आज बना है दुख,

क्यों छीन रहे मन का मधु सब ?

जिस गृह में आना-जाना था,
सब कुछ अपना पहचाना था;
ये चरण रुके जाते-जाते,

यह तुमने रोक लगा दी कब ?

दो दिन तो और संग चलते,
पथ में ही यों न मुझे छलते;
पहुँचा देते मुझको तट पर,

चल देते तुम चुपके से तब !

क्यों तुमने आँख चुरा ली अब ?

गीत

दिया मुझे जीवन का संवल,
किन्तु दो दिवस रख न सका मैं।

कलुषित कर से छूकर पावन,
किए स्नेह के फूल अपावन;
सदय रहे फिर भी मनभावन।

दिया अमृत-घट मुझे हाथ में,
किन्तु अमृत-सा चख न सका मैं।

छा दी तुमने शीतल छाया,
जिससे हरी रहे नित काया;
पर मैंने फैलाई माया।

तुममें अपना रूप निहारा,
रूप तुम्हारा लख न सका मैं।

गीत

सिद्धि की बेला न हो,
हो साधना ही यह निरंतर।

हो चिरंतन ही तपस्या,
रहे उलझी-सी समस्या;

जागरित-सा रहे उर में,
अलख का ही स्वर अनश्वर;

खोजने को तुम्हें आकुल,
नयन घूमें विश्व व्याकुल;

आगमन की हो न बेला,
हो प्रतीक्षा ही मधुरतर!

सिद्धि की बेला न हो,
हो साधना ही यह निरंतर।

गीत

मंदिर तक जाकर फिर आया।

सोचा चरण कलंकित मेरे,
भाव हृदय के शंकित मेरे;
उर में कल्मष अंकित मेरे,

हो न कहीं अपवित्र मूर्त्ति
मैं अपनी छाया से घबराया।

दूर-दूरतर और दूरतम,
चला जा रहा हूँ अब क्रम-क्रम;
दूर हटे जिससे मन का भ्रम,

वह महान गौरव की प्रतिमा
मैं निज लघुता से सकुचाया।

मंदिर तक जाकर फिर आया।

मंदिर-दीप

मैं मंदिर का दीप तुम्हारा।

जैसे चाहो, इसे जलाओ,
जैसे चाहो, इसे बुझाओ,

इसमें क्या अधिकार हमारा?
मैं मंदिर का दीप तुम्हारा।

जस करेगा, ज्योति करेगा,
जीवन-पथ का तिमिर हरेगा,

होगा पथ का एक सहारा!
मैं मंदिर का दीप तुम्हारा।

बिना स्नेह यह जल न सकेगा,
अधिक दिवस यह चल न सकेगा,

भरे रहो इसमें मधुधारा,
मैं मंदिर का दीप तुम्हारा।

गीत

कब तक दृग से नहलाते
बीतेंगी सूनी रातें,
कब तक अरुणिम आँखों की
पूछोगे कभी न बातें ?

दृग तारों पर चढ़-चढ़कर
उतरेंगे कब तक तारे ?
सूखेंगे तृप्त हृदय पर
गिर-गिरकर आँसू खारे ?

आओ नीरव रजनी में
अपने पद चाप छिपाए;
यह स्नेहहीन दीपक हो
जल-जल न कहीं बुझ जाये !

गीत

कैसे गए भूल ?
बोलो सरल प्राण !

आती नहीं क्या, तुमको कभी याद ?
वे मदभरी रात, वे मदभरी बात ?
सुख के सरस फूल ,
अब तो बने बाण !

तुमने कहा था कि जीवन जगत पार ,
होगा सहज स्नेह, होगा अमर प्यार ,
पर,तुम कहाँ?मैं कहाँ?
अब धरो ध्यान ;

माना कि इसमें तुम्हारा नहीं दोष ,
दुर्भाग्य अपना सजाता नयन कोष ,

यदि मैं गया चूक
तो दो क्षमा-दान !

वे आश अभिलाष, अब हैं बने धूल,
डिग-सा रहा आज, विश्वास का मूल,
बहता प्रभंजन
उठकर करो त्राण ;
कैसे गए भूल ?
बोलो सरल प्राण !

गीत

यह उपहार तुम्हारा ही है।

मधुऋतु था, आया अब पतझर,
देखो पके केश, तन जर्जर,
मन जर्जर जीवन जर्जर है,

यह भी प्यार तुम्हारा ही है।

अब बीते दिन की सुधि आती,
आँखों में आँसू भर लाती,
लगती आह! कसकने छाती,

यह सत्कार तुम्हारा ही है।

ओ अपनेपन के अभिमानी!
कृपण बनो मत मेरे दानी!
वह शृंगार तुम्हारा ही था,

यह शृंगार तुम्हारा ही है!

द्वन्द्व-गीत

प्रलय रहेगा और प्रणय भी।

जीवन से होगी चिर-ममता,
जीवन में है भरी विषमता;

युद्ध करेंगे, प्रेम करेंगे,
क्रूर बनेंगे और सदय भी।

प्रलय रहेगा और प्रणय भी।

वीर स्वत्व के लिए लड़ेंगे,
प्रेमी धँस पाताल गड़ेंगे;

यह संघर्ष रहेगा शाश्वत,
देह रहेगी और हृदय भी।

प्रलय रहेगा और प्रणय भी।

राग रहेगा औ' विराग भी,
आग रहेगी औ' पराग भी;

पथिक नहीं अपना पथ छोड़ो,
भीत रहेंगे और अभय भी।

प्रलय रहेगा और प्रणय भी।

गीत

कब तक यह व्यापार चलेगा ?

नहीं खुलेंगे, कब तक ये मन !
नहीं खुलेंगे, कब तक ये तन !

कल्पित स्वप्नों का जगजीवन
कब तक जीवन प्राण छलेगा ?

कब तक यह व्यापार चलेगा !

कब संशय की भीति ढहेगी !
अविचल प्रीति-प्रतीति बहेगी !

भुज बंधन का हार तुम्हारा
मन के सारे शूल दलेगा।

कब तक यह व्यापार चलेगा !

तन हो एक, एक मन होगा,
एक हमारा जीवन होगा !

मिलन कुंज की मधु छाया में
कब विस्मृति-मकरंद ढलेगा !

कब तक यह व्यापार चलेगा !

गीत

क्या सुख ऐसे मधुर मिलन में ?

जब तक आकुल सजल प्रतीक्षा,
दे न सके तप की शुचि दीक्षा;

निशि के तारे घुलें न दृग में
दोनों के जीवन में;

जीवन-सागर को मथ-मथकर,
चले न व्यथा सजी सी रथ पर;

हो बड़वाग्नि न जलती जब तक
दोनों ही के मन में;

एक विहाग न बजे नयन में,
बहें नहीं आँसू क्षण-क्षण में;

उठे मूर्च्छना मीड़ न जब तक
दोनों ही के तन में;

क्या सुख ऐसे मधुर मिलन में ?

गीत

आज माँझी नाव को बाँधो नहीं ,
आज तुम पतवार को साधो नहीं ;

मोह वह बेकार है सब छोड़ दो ,
आज लंगड़ इस तरी के तोड़ दो ;

जायगी यह पार, या मँझधार में ;
तुम करो चिंता न बहकर प्यार में !

पास में जो भी दया हो तोल दो ,
पाल अब तुम इस तरी के खोल दो ।

थी बड़ी करुणा तुम्हारी साथ दे ,
पार दिखलाया इसे बढ़ हाथ दे ;

आज यह जर्जर बनी है, भग्न है ;
मुक्ति की आई घड़ी, शुभ लग्न है !

ज्वार आये, या कि दीर्घ उतार हो ,
ढूँढ़ लेगी यह कभी तो पार को ;

ज्वार के आघात में ही चूर्ण हो
जीत यह भी, मुक्ति अपनी पूर्ण हो ।

अब इसे बाँधो न बंधन में कहीं ,
छोड़ दो जी हो जहाँ जाये वहीं !

तुम विदा दो, प्रेम से 'जय' बोल दो !
आज माँझी नाव को तुम खोल दो !

मन-घन

आज फिर, मन घन भरा है!

बाँध रक्खा था युगों से
अश्रु वह दृग में ढरा है!

बह रही है पवन सनसन,
खुल रहा फिर, प्रणय-बंधन,
बिरह-लतिका पनपती है,
घाव फिर, अपना हरा है।

आज फिर मन-घन भरा है!

आज फिर, बढ़ती विकलता,
रूप का सुरधनु निकलता,

कौंधती है चाह उर की
आज पीड़ा उर्वरा है।

आज फिर मन-घन भरा है!

बह चले फिर नयन निर्झर
बह चले सरिता-सरोवर ;
कहाँ माँझी ? पाल खोलो ,
आज जलप्लावित धरा है।

आज फिर मन-घन भरा है!

तुम

तुम कौन ? लिए यौवन अनंत
मधुमय बसंत बन आते हो ?

पतझर के पत्र हटा देते,
कोमल किसलय उकसा देते,
सरसिज में मधु बरसा देते;

तुम कौन ? किरण बनकर
फूलों की सोई नींद जगाते हो ?

रजनी के प्रहरों में आते,
क्यों दिन में आते सकुचाते;
लज्जा से क्यों हो गड़ जाते ?

तुम छुई-मुई से कौन
ज़रा-सा छूने से मुरझाते हो ?

तुम कौन न जिसने जग जाना ?
सब धर्म-कर्म को ठग माना,
पथ तुमने अपना पहचाना ;

अनुगामी विश्व बना फिरता,
तुम नूतन विश्व रचाते हो।

तुम पगपायल की रुमझुमरुम,
तुम शिर सुहाग की श्रीकुंकुम,
प्रतिदिन की भाषा में 'तुम' तुम !

अधरों पर मधुर नाम बनकर
युग-युग तक अलख जगाते हो !

आगमन

तुम पल में देते हो सँवार
बिखरी-सी रूखी अलकों को,
नवजीवन सा मिल जाता है,
मधु कौन पिलाते पलकों को ?

आँगन में चरण-किरण पड़ते,
तम-सा अवसाद बिखर जाता,
इन अंग-लताओं में जाने
कैसा रसरंग निखर जाता ?

वीणा के उतरे हुए तार,
सहसा पल में सध जाते हैं,
स्वर स्निग्ध सहज ही बन जाते,
'दरबारी' में बँध जाते हैं !

जीवन की काली रजनी में
है प्रात सुनहला छा जाता,
खिलते हैं पुष्प मनोरथ के
मलयज मरंद बिखरा जाता!

हो जाता है, साकार स्वप्न
निर्धन की अभिलाषा फलती,
मरुथल में नंदन उग आता
उपवन की कली-कली खिलती!

मुरझे प्राणों में रिमझिम कर
है अमृत की फुहार पड़ती!
सूखे धानों को जल मिलता,
हरियाली है बाँसों बढ़ती!

आगमन तुम्हारा होता है
ऐसा ही प्रिय, आनंद भरा,
सब पाप ताप मिट जाते हैं
पुलकित होते हैं प्राण, धरा!

अपवर्ग स्वर्ग मिल जाते हैं
सब शीतल अंचल छाया में,
तुम कौन महान अलौकिक हो
सीमित मानव की काया में?

हे ज्योतिर्मय ! निज ज्योति-
रश्मि से छू दो यह मिट्टी का तन !
मैं ज्योतिर्मय हो एक बनूँ,
विच्छिन्न न हो फिर, अमर-मिलन !

गीत

यह भरा कहाँ का रूप अतुल
लहराते तन-छवि-सागर में !
कितनी वीणा पिघलीं, जिनका
रव झंकृत हो उठता स्वर में !

कितने पंकज-वन का वैभव
सो गया सिमट कर स्मिति में !
कितने बन का मधु एकत्रित
है माणिक अधरों की कृति में !

कितनी लतिकाओं वल्लरियों के
अंग-भंग करके क्षण-क्षण !
कर-पल्लव बाहु-लतायें ये
विधि ने विरचा भर आकर्षण !

कितने प्राणों का रूप और
रस गंध सत्य शिव ले सुंदर ?
प्रियतम ! तुमको निर्माण किया
विधि ने अपनी निधियाँ लेकर !

क्या बतलाओगे भेद कभी
अपने विराट इस वैभव का ?
लगते असीम क्यों तुम मेरे,
क्या अर्थ हृदय के कलरव का ?

रिमझिम

नवल नील मणि की आभा ले
छाये नभ में श्यामल घन,
सजल हो उठी आकुल धरणी
पा प्रिय का मधुमय दर्शन ;

सर हो उठे उच्छ्वसित उन्मद
गाते मुग्ध-मिलन के गान,
चले तरंगित सरिताओं में
हो जाने को अन्तर्धान।

सरितायें चल पड़ीं चपलगति
ले मानस की मत्त उमंग,
महासिन्धु में आत्मप्रलय कर
बन जाने को एक तरंग।

बिकल बेलियाँ विरह ताप से
जो थीं अब तक दीन मलीन,
वे भी हुईं पल्लवित कुसुमित
तरु के अन्तरतम में लीन।

कालिदास के विधुर यक्ष के
सहृदय दूत! नील जलधर!
क्या तुम मुझको इतनी भिक्षा
दे न सकोगे करुणाकर?

ले जाओ मेरे ये आँसू
बरसा दो उन चरणों में,
जीवन-हिमकण चढ़ा दिया है
जिनकी कंचन किरणों में।

उस प्रदेश में जाकर बरसो
हे पर-दुख-कातर नवघन!
जहाँ छा रहे हों निर्मोही
अपलक नयनों के चिंतन।

उस प्रदेश में जाकर बरसो
चातक को दो जीवन-दान,
तृणतृण में कणकण में क्षणक्षण
गुंजित हो पी-पी की तान;

उस प्रदेश में जाकर बरसो
मधुकर को दो मृदु गुंजन,
पात-पात में फूल-फूल में
फूट उठे नूतन यौवन।

उस प्रदेश में जाकर बरसो
मोरों को दो गीले गान,
उर-उर के कम्पन में जागृत
हो अति करुण-प्रणय आह्वान।

मेरे गृह मेरे प्रिय आयें
तो ले पत्र-पुष्प-चन्दन,
पहले वन्दन करूँ तुम्हारा
पीछे उनका अभिनन्दन!

आँसू के प्रति

कौन तुम गोल-गोल अनमोल।
कपोलों पर ढुलके अनजान ?
सीपियों के मोती ! मत गिरो,
पतन में रखा नहीं है मान !

हमारी कितनी मधुर उमंग
हमारी कितनी साध अपूर्ण ?
तुम्हारे गिरने ही के साथ !
पलक में हो जायेगी चूर्ण !

झुलसने लगता है जब गात,
तुम्हीं ले आते हो बरसात;
तुम्हारी छाया में दिन-रात
झरा करता है अश्रुप्रपात !

हृदय की फुलझड़ियाँ अनमोल !
बुझो मत करती रहो प्रकाश !
अरे कुछ तो न मिलेगा तुम्हें
अँधेरा कर मेरा आवास !

तुम्हें चढ़ना ही है यदि कहीं
अरे मेरे हीरों के हार !
चढ़ो उन चरणों में उपहार !
किया जिन पर जीवन बलिहार !

आँसू के कण

ढुलक पड़े तुम भी कपोल पर
ऐ शीतल उज्ज्वल जलकण !
फिर कैसे कंपित न धैर्य हो ?
खोकर अंतिम अवलंबन !

दीन दुखी दुर्बल के बल ऐ
अस्थिर उर के आश्वासन !
तुम मत अपना अंचल खींचो
ऐ करुणा के नन्हें कण !

ऐ मेरी आँखों के पानी
यदि चल दोगे तुम ही कण !
तो फिर कहाँ मिलेगा आश्रय ?
यह जग तो निर्मम भीषण !

कौन तप्त हृत्तल सींचेगा ?
बन झरने की तरल झरन,
कौन तिमिर-पथ में छायेगा ?
बनकर मधुमय स्वर्ण-किरण !

श्रमिक दीन दुर्बल ग़रीब की
कठिन कमाई के कंचन !
खुलो गाँठ से अभी नहीं तुम
बँधे रहो निर्धन के धन !

ऐ सहृदय इस समय न छोड़ो
जब तक ज्वाला जलन तपन ;
सजल रखो सूखीको रों को
बनकर हृत्तल के चंदन !

बार-बार ढल-ढल पल-पल में
व्यक्त करो मत उत्पीड़न ;
इस जग में सुख के सब संगी
दुख में कोई नहीं स्वजन ;

लवण-सिंधु के मधुमय अमृत !
दो मृत-हत को नवजीवन !
ढलो नहीं आकुल आँखों से
ऐ मेरे आँसू के कण !

तुलसीदास

अकबर का है कहाँ आज मरकत सिंहासन !
भौम राज्य वह, उच्च भवन, चारण, वंदीजन ;

धूलि धूसरित ढूह खड़े हैं बनकर रजकण ,
बुझा विभव वैभव प्रदीप, कैसा परिवर्त्तन !

महाकाल का वक्ष चीरकर, किंतु, निरंतर ,
सत्य सदृश तुम अचल खड़े हो अवनीतल पर ;

रामचरित मणि-रत्न-दीप गृह-गृह में भास्वर ,
वितरित करता ज्योति, युगों का तम लेता हर ;

आज विश्व-उर के सिंहासन में हो मंडित ,
दीप्तिमान तुम अतुल तेज से, कान्ति अखंडित ;

वाणी-वाणी में गुंजित हो बन पावन स्वर ,
आज तुम्हीं कविश्रेष्ठ अमर हो अखिल धरा पर !

बोधिवृक्ष

तुम कौन छिपाये व्यथा हृदय म
खड़े यहाँ कानन-वासी ?
किसलिए उदासी छाई है
किसलिए बन गए संन्यासी ?

क्या सोच रहे हो तुम अपने
जीवन-सहचर की करुण-कथा ?
या दग्ध कर रही है तुमको
उस दया-धाम की विरह-व्यथा ?

क्यों मौन खड़े हो हे तरुवर !
कुछ तो मर्मर स्वर में बोलो,
उलझी है कौन गाँठ उर की
अपने मन का रहस्य खोलो ?

हे भाग्यवान ! सौभाग्य तुम्हारा-
सा किसने जग में पाया ?
जिसके अंचल में रहने को
करुणावतार आतुर आया ;

शुद्धोदन का वह रत्न-जटित
सिंहासन विगलित हो क्षण में,
तव चरण-धूलि धर मस्तक पर
हो गया धन्य इस जीवन में !

वह दिन कितना मधुमय होगा
जब पल्लव छाया के नीचे ?
करुणावतार की मधुर-मूर्ति
बैठी होगी आँखें मीचे !

थी दिव्य ज्ञान की ज्योति उसी दिन
उतरी जग के आँगन में,
करुणा की धारा फूट पड़ी
जिस दिन गौतम के जीवन में !

वह था जगती का स्वर्ण-काल
जब अभयदान जग ने पाया,
करुणा की अरुण-हिलोरों से
जब हृदय-हृदय था भर आया ;

इस बाह्य रूप का भेद भूल
आत्मा ने आत्मा को जाना,
दो बिछुड़े हृदय मिले फिर से
प्राणों ने सुख था पहचाना!

युग-युग हैं तब से गए बीत
हे मौन! आज कुछ गाओ तुम,
संदेश दया का भूले हम
अब फिर से उसे सुनाओ तुम!

हे बोधिवृक्ष! तव आँगन में
जगती के नर-नारी आयें,
संतप्त हृदय तव छाया में
प्राणों की शीतलता पायें!

बुद्धदेव के प्रति

क्या अब फिर, तुम आ न सकोगे ?

हिंसा नृत्य कर रही गृह-गृह,
मृत्यु ग्रसित करती है रह-रह,
रक्त धार उठती है बह-बह,

फिर आकुल आँखों में अब तुम
क्या दो आँसू ला न सकोगे ?

जब जगती थी शोणित-मग्ना,
चेतनता थी तिमिर-निमग्ना,
गति मति प्रगति हुई थी भग्ना,

तब तो तुम आये थे उत्सुक,
क्या अब चरण बढ़ा न सकोगे ?

मानव में है रही न ममता,
स्वप्न बनी प्राणों की समता,
फिर किसमें हो करुणा क्षमता ?

भरा विषमता से भव आकुल
क्या समक्रम लौटा न सकोगे ?

फिर अशोक चढ़ते कलिंग पर,
शोणित से हो रहे खड्ग तर,
नर-संहार मचा है बर्बर,

बनकर दारुण ताप हृदय में
क्या परिवर्तन ला न सकोगे ?

लौटा द वह युग मंगल-मय,
पशु पक्षी सब जिसमें निर्भय,
जहाँ अहिंसा का अरुणोदय,

प्राण-प्राण में एक राग हो
क्य ।ह मधुऋतु ला न सकोगे !

आओ, एक बार फिर आओ,
लाओ, वह मंगल दिन लाओ,
गाओ, वह करुणालय गाओ,

आज कहो मत वह करुणा का
महागान फिर गा न सकोगे।

क्या अब फिर, तुम आ न सकोगे?

क्रम

प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
अकबर का है कहाँ आज मरकत सिंहासन	८४
आँखों से आँखें मिलकर	४८
आओ, कर लो क्षण भर विराम	१
आज अर्चन वंदना में	४३
आज आ रही है रह-रहकर	२७
आज बरसों बाद आये	२४
आज फिर, मन-घन भरा है	६८
आज माँझी नाव को बाँधो नहीं	६६
उमड़ पड़ा है प्रेम न जाने	३६
उस प्रेमी जीवन की जय हो	३५
क्या अब फिर, तुम आ न सकोगे	८८
क्या सुख ऐसे मधुर मिलन में	६५
क्यों तुमने आँख चुरा ली अब	५२
कब तक दृग से नहलाते	५७
कब तक यह व्यापार चलेगा	६३
कब मिलन के क्षण बनेंगे	२१
कैसे गए भूल	५८
कौन तुम गोल-गोल अनमोल	८०
जानकर अनजान हूँ	३०
ढुलक पड़े तुम भी कपोल पर	८२
तुम कौन छिपाए व्यथा हृदय में	८५
तुम कौन लिए यौवन अनंत	७०
तुम चिर-मुक्त रहो	४६

प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
तुम पल में देते हो सँवार	७२
तुम वंचित न रहो	४५
तो सखि, फिर, इसका क्या उपाय	५०
दिया मुझे जीवन का संबल	५३
नवल नील मणि की आभा ले	७७
प्रणयी की मृदुल उमंगों-सी	३
प्रलय रहेगा और प्रणय भी	६१
प्रिय, नव पल्लव खिले डाल में	१६
फैला है अपार उपवन	४७
बनूँ न पथ में बाधा	४६
मंदिर तक जाकर फिर आया	५५
मन ने मन को जान लिया है	५१
मेरे यौवन के निकुंज में	१८
मैं मंदिर का दीप तुम्हारा	५६
यह अशेष कथा हृदय की	४२
यह उपहार तुम्हारा ही है	६०
यह दुराव अब चल न सकेगा	३६
यह भरा कहाँ का रूप अतुल	७५
लाज तजकर आज प्रियतम	१६
वह ग्राम-कन्यका	६
वह महुआ बिनती तरु नीचे	६
वे प्रणय के ध्यान मेरे	३८
सिद्धि की बेला न हो	५४
हिमाद्रि का आत्म-परिचय	१२
है दिया जब से सहारा	४०

प्रकाशक

अवध पब्लिशिंग हाउस

लखनऊ

मूल्य २)

१६४३

मुद्रक

पं० भृगुराज भार्गव

भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ